क़ुरबानी

सय्यद अबुल आला मौदूदी
अनुवादक
नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह-रहमान रहीम के नाम से)

आज से चार हज़ार साल पहले की बात है कि इराक़ में एक ऐसा शख़्स पैदा हुआ था जो हमेशा-हमेशा के लिए इनसानी तारीख़ पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ गया है। जिस ज़माने में उसने आँखें खोलीं, उस वक़्त पूरी दुनिया शिर्क और बुतपरस्ती में गिरफ़्तार थी। जिस क़ौम में वह पैदा हुआ वह तारों की पूजा करती थी। चाँद, सूरज और दूसरे सय्यारे उसके ख़ुदा थे। और शाही ख़ानदान इन्हीं ख़ुदाओं की औलाद होने की हैसियत से देशवासियों का रब माना जाता था। जिस ख़ानदान में वह आदमी पैदा हुआ वह पुरोहितों का ख़ानदान था और अपनी क़ौम को सितारापरस्ती के जाल में फाँसे रखने का असल ज़िम्मेदार वही ख़ानदान था।

ऐसे ज़माने, ऐसी क़ौम और ऐसे ख़ानदान में वह आदमी पैदा हुआ। दुनिया की आम रीति पर चलनेवाला होता तो वह भी उसी रास्ते पर जाता, जिसपर उसके ख़ानदान के लोग, उसके देश के लोग और उसके ज़माने के लोग चले जा रहे थे। कोई ऐसी रोशनी बज़ाहिर उस वक़्त दुनिया में कहीं मौजूद भी न थी जो किसी दूसरे रास्ते की तरफ ले जानेवाली हो। और उसका ख़ुद अपना और ख़ानदान का फ़ायदा भी इसी बात में था कि वह किसी और रास्ते का ख़याल भी अपने दिल में न लाता, क्योंकि उसके ख़ानदान की मज़हबी दुकान तो इसी सितारापरस्ती के बल पर ज़ोर-शोर से चल रही थी। लेकिन वह शख़्स उन इनसानों में से न था, जो बेजान घास-फूस की तरह उसी रुख़ पर उड़ने लगते हैं, जिधर की हवा हो। वह ख़ानदान सम्बन्धी पक्षपात की बिना पर बाप-दादा और क़ौम के तरीक़े को आँख बन्द करके क़बूल करने पर तैयार न हुआ। उसने होश संभालते ही यह तहक़ीक़ करना ज़रूरी समझा कि जिन अक़ीदों और उसूलों पर उसके बुज़ुर्गों ने और उसकी सारी क़ौम ने अपनी ज़िन्दगी की इमारत क़ायम कर

रखी है, वह बजाय ख़ुद सही भी हैं या नहीं। इस आज़ादाना तहक़ीक़ के सिलसिले में उसने सूरज, चाँद, ज़ोहरा और उन सब माबूदों पर नज़र डाली, जिनकी ख़ुदाई की चर्चाएँ वह बचपन से सुनता आया था। एक-एक को जाँच कर देखा कि उसपर ख़ुदाई का गुमान कितना सच्चा है और आख़िरकार यह दो टूक राय क़ायम की कि दर असल ये सब बन्दे हैं ख़ुदा नहीं। ख़ुदाई तो सिर्फ़ उस एक हस्ती की है जिसने ज़मीन और आसमान को पैदा किया है।

फिर जब यह हक़ीक़त उस पर खुल गई तो उसने उन लोगों का-सा तरीक़ा नहीं अपनाया जो एक बात को हक़ मानने और समझने के बावजूद उसे क़बूल नहीं करते। उसने हक़ को हक़ जानने के बाद उसे मानने में एक क्षण की भी देर न की और फ़ौरन इक़रार किया कि "मैं झुक गया, उस ख़ुदा के आगे जो ज़मीन और आसमान को पैदा करनेवाला है।" और इस इक़रार के साथ अपनी बिरादरी और क़ौम के सामने यह ऐलान भी कर दिया कि "मेरा रास्ता तुम से अलग है। मैं इस शिर्क और बुतपरस्ती में तुम्हारे साथ नहीं हूँ।" यह उस शख़्स की पहली क़ुरबानी थी। यह पहली छुरी थी जो उसने बाप-दादा की अन्धी पैरवी पर, ख़ानदान और क़ौमों सम्बन्धी पक्षपातों पर, और मन की उन तमाम कमज़ोरियों पर फेर दी, जिनकी वजह से आदमी अपने ज़मीर की आवाज़ के ख़िलाफ़ एक रास्ते पर सिर्फ़ इसलिए चलता रहता है कि बिरादरी और क़ौम और दुनिया उसी पर चली जा रही है।

इस इक़रार और ऐलान के बाद वह शख़्स ख़ामोश नहीं बैठ गया। उस पर यह हक़ीक़त खुल गई थी कि कायनात की असल हक़ीक़त तौहीद (एकेश्वरवाद) है और शिर्क सरासर एक बेबुनियाद चीज़ है। इस हक़ीक़त को जान लेने के बाद वह ख़ुद ही यह भी जान गया था कि वे सब लोग जो तौहीद के बजाय शिर्क के अक़ीदों और मुशरिकाना उसूलों पर अपने मज़हब, अख़लाक़ और तमद्दुन की इमारत क़ायम किए हुए हैं,

उन्होंने दरअसल एक ऐसी नाज़ुक शाख़ पर आशियाना बना रखा है, जो बहुत कमज़ोर है। इस एहसास ने उसे बेचैन कर दिया। वह ज़िम्मेदारी के पूरे एहसास के साथ उठ खड़ा हुआ कि अपनी क़ौम को शिर्क से रोके और तौहीद की तरफ़ बुलाए। उसे मालूम था कि क़ौमी मज़हब के ख़िलाफ़ इस तरह का खुल्लम-खुल्ला प्रचार करके उसे ख़ुद पुरोहित की गद्दी से हाथ धोना पड़ेगा। वह यह भी जानता था कि उसका ख़ानदान अगर क़ौमी मज़हब से फिर गया तो वह सारी शान जाती रहेगी, जो उसे देश में हासिल है। उसको इसका भी पता था कि इस तबलीग़ और प्रचार की वजह से सारी क़ौम का ग़ुस्सा उसपर भड़क उठेगा। वह इस बात से भी बेख़बर न था कि इस तबलीग़ के कारण वह हुकूमत के ग़ुस्से और ग़ज़ब का शिकार हो जाएगा। क्योंकि शाही ख़ानदान की बादशाहत इसी अक़ीदे पर क़ायम थी कि वह देवताओं की औलाद है। और इस वजह से तौहीद हुकूमत के बुनियादी नज़रिये से टकराती थी। यह सब कुछ जानने और समझने के बावजूद वह अपना फ़र्ज़ अदा करने के लिए उठा और अपने बाप को, अपने ख़ानदान को, अपनी क़ौम को और ख़ुद बादशाह तक को उसने शिर्क को छोड़ देने और तौहीद का अक़ीदा मान लेने की दावत दी। और फिर जितना ज़्यादा उसका विरोध किया गया, उतना ही ज़्यादा वह ज़ोर-शोर से प्रचार करने लगा। आख़िरकार नौबत यह आई कि एक तरफ़ वह बिलकुल अकेला था और दूसरी तरफ़ बादशाह, देश, बिरादरी, ख़ानदान यहाँ तक कि उसका अपना बाप तक उसके मुक़ाबले में खड़ा हो गया था। अब पूरे देश में कोई उसका दोस्त न था। हर तरफ़ दुश्मन ही दुश्मन थे। हमदर्दी की कोई आवाज़ तक उसके हक़ में उठनेवाली न थी। इस पर भी जब उसने हिम्मत न हारी। और तौहीद की दावत पेश करने से उसकी ज़ुबान न थकी, तो फ़ैसला किया गया कि बरसरे आम उसे ज़िन्दा जला दिया जाए। मगर इस भयानक सज़ा का डर भी उसे बातिल को बातिल और

हक़ को हक़ कहने से न रोक सका। उसने आग के अलाव में फेंका जाना गवारा कर लिया, मगर यह गवारा न किया कि जिस हक़ीक़त पर वह ईमान ला चुका है, उससे फिर जाए। और उसे हक़ीक़त कहना छोड़ दे। यही उसकी दूसरी अज़ीमुश्शान क़ुरबानी थी।

न जाने किस तरह ख़ुदा ने उसे आग में जलने से बचा लिया । इस ख़तरे से सकुशल गुज़र जाने के बाद उसके लिए देश में ठहरना नामुमकिन था। आख़िरकार उसने वतन छोड़ दिया। आस-पास के सारे देश जिनमें वह जा सकता था उस वक़्त बुतपरस्त थे। कहीं कोई ऐसी छोटी से छोटी बिरादरी या समाज भी मौजूद न था जो तौहीद का माननेवाला हो, जिसके पास पनाह लेकर बेख़ौफ ज़िन्दगी गुज़ार सकता और इसकी सिर्फ़ यही एक सूरत थी कि वह अपने देश से निकल जाने के बाद तौहीद की तरफ़ बुलाना छोड़ देता। निजी तौर पर अगर एक अजनबी आदमी किसी मज़हब का पैरो हो तो दूसरे देशों के लोग उसे यूँ ही बिला वजह छेड़ने की तकलीफ़ क्यों करते। बल्कि उन्हें क्या पड़ी थी कि उसका मज़हब मालूम करते, मगर वह ख़ुदा का बन्दा दूसरे देशों में भी जाकर ख़ामोश न रहा। वह जहाँ भी गया उसने ख़ुदा के सब बन्दों को यही दावत दी कि दूसरों की बन्दगी छोड़ो और सिर्फ़ इसी एक ख़ुदा के बन्दे बनकर रहो जो हक़ीक़त में तुम्हारा ख़ुदा है। इस तबलीग़ और प्रचार का नतीजा यह हुआ कि अपने देश से निकलकर भी उसे कहीं चैन से बैठना नसीब न हुआ। कभी शाम (सीरिया) में है तो कभी फ़िलिस्तीन में, कभी मिस्र में है तो कभी हिजाज़ में। इस प्रकार सारी उम्र यूँ ही देश-देश की ख़ाक छानते गुज़र गई। उसको आराम के ठिकाने की चाह न थी। उसको घर और खेत और मवेशी और कारोबार की तलब न थी। उसको दुनिया के ऐश और ज़िन्दगी के सरोसामान की चाह न थी। उसे सिर्फ़ इस चीज़ की तलब थी कि जिस हक़ पर वह ईमान लाया है, उसका बोल-बाला हो और तमाम इनसान गुमराही को छोड़कर उस सीधी राह पर चलने लगें, जिसमें उनका भला है। यही तलब और यही कामना उसे ज़गह-जगह लिए फिरती थी। और इसी तलब और फ़िक्र के

पीछे उसने अपने हर फ़ायदे को त्याग दिया। यह उसकी तीसरी बड़ी क़ुरबानी थी।

इस ख़ानाबदोशी और बेसरोसामानी की हालत में फिरते-फिरते जब उम्र ख़त्म होने को आई तो ख़ुदा ने उसे एक बेटा दिया। उस बच्चे को पाला-पोसा। यहाँ तक कि वह उस उम्र को पहुँचा जब औलाद माँ-बाप के कामों में उनका हाथ बटाने और ज़िन्दगी की दौड़-धूप में उनका साथ देने के लायक़ होती है। बेटा और वह भी इकलौता बेटा, फिर नवजवानी की सीमा को छूता हुआ। और बाप ज़िन्दगी की उस मंज़िल में जबकि आदमी जवान औलाद के सहारे का सबसे ज़्यादा मुहताज होता है। हर आदमी इस स्थिति को सामने रखकर अन्दाज़ा कर सकता है कि उस बाप को वह बेटा कितना प्यारा होगा। मगर मुसलमान के मायने यह हैं कि उसे ख़ुदा और उसकी मर्ज़ी से बढ़कर कोई चीज़ भी प्यारी न हो। इसलिए वह सारी क़ुरबानियाँ भी काफ़ी न समझी गईं, जो वह बन्दा अपने ख़ुदा के लिए जीवन भर करता रहा था। इन सबके बाद उसका आख़िरी इम्तिहान लेना ज़रूरी समझा गया। और वह यह था कि वह मुसलिम बन्दा अपने उस सबसे प्यारे बेटे की मुहब्बत को भी ख़ुदा की मुहब्बत पर क़ुरबान कर सकता है, या नहीं। अतः यह इम्तिहान भी ले डाला गया, और दुनिया ने देख लिया कि वह बूढ़ा इनसान अपने ख़ुदा का खुला हुक्म नहीं बल्कि सिर्फ़ एक इशारा पाते ही इकलौते नौजवान बेटे को ख़ुद अपने हाथ से ज़िबह करने को तैयार हो गया। यह और बात है कि ख़ुदा ने बिलकुल ज़िबह के वक़्त लड़के की जगह मैन्ढे को क़बूल कर लिया। क्योंकि ख़ुदा को लड़के का ख़ून नहीं चाहिए था। बल्कि उसे तो सिर्फ़ मुहब्बत की आज़माइश करनी थी। लेकिन उस सच्चे मुसलमान ने अपनी नीयत की हद तक तो अपने जिगर का टुकड़ा अपने ख़ुदा के इशारे पर क़ुरबान कर ही दिया था। यह थी वह आख़िरी और सबसे बड़ी क़ुरबानी जिसे उस शख़्स ने अपने इस्लाम और ईमान

और ख़ुदा के साथ अपनी वफ़ादारी के सबूत में पेश की थी। इसी के बदले में ख़ुदा ने उसे तमाम इनसानों का इमाम बनाया और अपनी दोस्ती के पद से सम्मानित किया।

आप समझे कि यह किस शख़्स का ज़िक्र है? यह उस महान और बड़ी हस्ती का ज़िक्र है जिसे आज हम सब हज़रत इबराहीम (अलैहिस्सलाम) के नाम से जानते हैं। और यही वह क़ुरबानी है जिसकी यादगार आज दुनिया भर के मुसलमान जानवरों की क़ुरबानी करके मनाते हैं। इस यादगार के मनाने का मक़सद यह है कि मुसलमान के अन्दर क़ुरबानी की वही रूह, इस्लाम और ईमान की वही कैफ़ियत और ख़ुदा के साथ मुहब्बत और वफ़ादारी की वही शान पैदा हो, जिसका नमूना हज़रत इबराहीम (अलैहिस्सलाम) ने अपनी पूरी ज़िन्दगी में पेश किया। अगर कोई शख़्स केवल एक जानवर के गले पर छुरी फेरता है और उसका दिल इस रूह से खाली रहता है तो वह नाहक़ एक जानवर का ख़ून बहाता है। ख़ुदा को उसके ख़ून और गोश्त की कोई ज़रूरत नहीं। वहाँ तो जो चीज़ चाहिए वह दरअसल यह है कि जो शख़्स कलिमा 'ला इला-ह-इल्लल्लाह' पर ईमान लाए वह पूरे तौर पर हक़ का बन्दा बनकर रहे। कोई तास्सुब, कोई दिलचस्पी, कोई निजी फ़ायदा कोई दबाव और लालच, कोई डर और नुक़सान ग़रज़ कोई अन्दर की कमज़ोरी और बाहर की ताक़त उसको हक़ के रास्ते से न हटा सके। वह ख़ुदा की बन्दगी का इक़रार करने के बाद फिर किसी दूसरी चीज़ की बन्दगी क़बूल न करे। उसके लिए हर सम्बन्ध को क़ुरबान कर देना आसान हो, मगर उस सम्बन्ध को क़ुरबान करना किसी तरह मुमकिन न हो जो उसने अपने ख़ुदा से जोड़ा है। इस्लाम कहते ही हैं ऐसी क़ुरबानी को। और आज हर ज़माने से बढ़कर हम इसके ज़रूरतमन्द हैं कि इस्लाम की यह रूह हमारी ज़िन्दगियों में जगह पा ले। मुसलमानों ने जब कभी भी दुनिया में चोट खाई है तो इसकी वजह इसके सिवा और कुछ नहीं थी कि वे इस्लाम की इस रूह से ख़ाली थे। ■